'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १२० } वाराणसी, मंगलवार, २० अक्टूबर, १९५९ { पचीस रुपया वार्षिक

सर्व-सेवा-संघ की बैठक में

पठानकोट (पंजाब) २४-९-'५९

शान्ति-सेना-मंडल और हमारा कर्तव्य

साहित्यकारों ने सर्वोदय-आन्दोलन में हिस्सा नहीं लिया, इसलिए वे हमें क्या सलाह देंगे, क्या मदद देंगे, यह मानना निरा अहंकार है। हमें समझना चाहिए कि ऐसे भी साहित्यिक हो सकते हैं, जो कि इस आन्दोलन में दाखिल नहीं हुए हैं, फ़िर भी उन्हें आपके आन्दोलन का सच्चा और अच्छा दर्शन होता है। साहित्यिकों में एक खूबी होती है कि उन्हें दूर से ही दर्शन होता है। मैं खुद साहित्यिक नहीं हूँ, लेकिन मुझे साहित्य की शक्ति का भान है। दुनिया की बहुत सी भाषाओं के अच्छे-से-अच्छे साहित्य का अध्ययन करने का मुझे मौका मिला है और मैं शब्द-शक्ति के महत्त्व को जानता हूँ, इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि हमने आज तक साहित्यिकों की उपेक्षा की, यह ठीक नहीं किया। साहित्यिकों के पास हमें नम्रतापूर्वक पहुँचना चाहिए। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि फलाना मनुष्य खादी नहीं पहनता है, सूत नहीं कातता है, शायद बीड़ी भी पीता है और उसका जीवन हमसे अलग प्रकार का है, इसलिए हमें उससे क्या मदद मिलेगी? परमेश्वर की ऐसी कृपा है कि कभी-कभी वह जीवन के साथ दर्शन का ताल्लुक रखता है तो कभी नहीं भी रखता है। गीता में कहा है: 'अपि चेत् सुदुराचारो'।

दर्शन किसे होता है?

भक्ति का सदाचरण के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध माना गया है। गीता के सातवें अध्याय में कहा है कि चार प्रकार के पुण्यशाली भक्त होते हैं। इस तरह यहाँ पुण्याचरण के साथ भक्ति का सम्बन्ध बताया है तो नववे अध्याय में कहा है कि दुराचारी भी भक्त हो सकता है। याने भक्ति का सदाचरण के ही साथ हमेशा ताल्लुक है, ऐसा नहीं। दुराचरण के साथ भी भक्ति का ताल्लुक है। यह भक्ति की कीमिया है कि दुराचारी भी भक्ति कर सकता है। वैसे ही साहित्यिकों में भी साहित्य का मूलभूत विचार कभी-कभी उन लोगों को सूझता है, जिनका सदाचरण से सम्बन्ध है और कभी-कभी उन लोगों को सूझता है, जिनका सदाचरण के साथ सम्बन्ध नहीं है और जिनका आचरण देखकर हम कल्पना नहीं कर सकते कि ऐसे मनुष्य को गहरा और सूक्ष्म दर्शन होगा। इसीलिए मैं ईश्वर को मानता हूँ। गोराजी मुझे माफ करें, लेकिन गहरे, सूक्ष्म और प्रतिभा के विचार कभी-कभी ऐसे मनुष्य को सूझते हैं, जिनका सदाचरण से सम्बन्ध नहीं है, इसलिए परमेश्वर को मानना पड़ता है। क्योंकि परमेश्वर के जैसा 'डिस्टर्बिंग फेक्टर' न हो तो यह कैसे हो सकता है? इसका उत्तर नहीं मिलता है। वैसे हमेशा परमेश्वर को तकलीफ नहीं देनी पड़ती है। लेकिन कभी-कभी ऐसे मौके आते हैं, जब चीज़ एक्स्प्लेन नहीं होती है, तब परमेश्वर को लाना ही पड़ता है। शेक्सपियर के जीवन में और दर्शन में क्या अन्तर था? अगर कोई उसके जीवन से अन्दाजा करना चाहे कि उसका चिन्तन क्या होगा तो नहीं कर सकता है। इसमें हमारा नीति का चिन्तन भी ऐसा है, जो हम हमारी अक्ल से ही करते हैं। कुछ चीजें हम अपनी अक्ल से जान सकते हैं तो कुछ चीजें हमारी अक्ल से परे हैं। इसलिए साहित्यिकों की सेवा हमें उपलब्ध होनी चाहिए और हो सकती है।

साहित्यिकों का आश्रय जरूरी

साहित्यिक हमें काफी अनुकूल हैं और यह हमारा फर्ज है कि हम उनकी सेवा प्राप्त करें। अगर उनकी सेवा प्राप्त करेंगे। तो आज हमारे प्रकाशन की जो हालत है, उससे बेहतर हालत होगी। इन आठ सालों में हमारा एक प्लेटफार्म बना है। आप, हम और हमारे छोटे-छोटे कार्यकर्त्ता भी कहीं जाते हैं तो उन्हें ध्यानपूर्वक सुननेवाले लोग मिल जाते हैं। इस तरह हमारा प्लेट-फार्म बना है, लेकिन प्रेस नहीं बना है। प्रेस शब्द का अर्थ मैं अंग्रेजी अर्थ में कर रहा हूँ। आज हमारा साहित्य जितना खपता है, उससे बहुत ज्यादा खपता और लोगों के हृदय में पैठता, अगर हम साहित्यिकों की मदद ले सकते! कभी-कभी हमारे भूदान के अखबारों में जो निबन्ध-माला आती है, उसको मैं ज्यादा तो नहीं पढ़ता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि उसमें वे ही वे विचार होंगे, पर सरसरी तौर पर देख लेता हूँ। मैंने इन निबन्ध-लेखकों को एक विनोद की सूचना दी है। मेरे विरोध में बहुत गहरी चीज होती है, इसीलिए मैंने 'विनोद' शब्द का उच्चारण किया है। मैंने कहा कि आप मिल्कियत मिटाना, भूदान-यज्ञ आदि ऐसे सौ-डेढ़ सौ शब्दों की फेहरिश्त बनाओ, और इन शब्दों को

टालकर लिखो तो जरूर आप साहित्यिक बन सकोगे और आपके निबंध जरूर पठनीय होंगे। बार-बार वही-वही चीज हम दुहराते हैं तो यांत्रिक बनती है, उसमें रस नहीं रहता है, अभिनव उन्मेष जो होने चाहिए, शब्दों के नये-नये अंकुर फूटने चाहिए, वह नहीं होता है। हमें शब्दतत्त्वसारज्ञ होना चाहिए। तभी हम लिख सकेंगे। लेकिन वह सम्भव नहीं है। इसलिए हर कोई निबन्ध लिखे, यह नहीं बन सकता है, लेकिन अपने काम का बयान हर कोई कर सकता है। निबन्ध लिखना तो प्रतिभावान लेखक का काम है। ऐसे प्रतिभावान लेखकों का आश्रय हमें मिल सकता है! हमें उनका आश्रय लेना ही चाहिए, उनके आश्रित बनना ही चाहिए। इसके मानी यह नहीं कि हमें अपने विचार, कन्विक्शन छोड़ना चाहिए। हम अपने विचार पर चिपके रहें, लेकिन साहित्यिक हमारी क्रिटिसिज्म करें तो उसे भी हम माँगें। चाहे वे एप्रिसिएशन करें या क्रिटिसिज्म, हमारे लिए वह मदद ही होगी।

लिखने से विचार-सफाई

हमारे कार्यकर्ता लिखते नहीं हैं, यह मेरी हमेशा से शिकायत रही है। लिखने में विचार की सफाई होती है। मैं इन दिनों लिखता नहीं हूँ, इसलिए कोई अगर मेरा अनुकरण करके न लिखे तो वह गलत अनुकरण होगा। मैं इसलिए नहीं लिखता हूँ, क्योंकि मैं काफी लिख सकता हूँ। मेरे चित्त में नये-नये विचार आते हैं। नये-नये शब्द मुझे सूझते हैं। मैं बोलता रहता हूँ, इसलिए लिखता नहीं हूँ और लिखने के लिए समय भी नहीं है, लेकिन कार्यकर्ताओं को लिखना चाहिए और लिखकर मुख्य स्थान पर भेजना चाहिए। हम लिखते नहीं हैं, इसका परिणाम यह होता है कि हमारा चिन्तन-प्रवाह सूखता जाता है। बेकन ने कहा था 'रीडिंग मेक्स ए फुल मैन एन्ड रायटिंग मेक्स हिम एक्जेक्ट' लिखने से विचार में स्पष्टता आती है। बोलने का भी एक गुण है। लेखक बनने के लिए लिखने की बात मैं नहीं करता हूँ। बल्कि अपने लिए रोज के अनुभव हम लिख रखें। उसमें किसीकी कोई हानि नहीं होगी। अपना अनुभव लिखकर मुख्य स्थान पर भेजना चाहिए, फिर चाहे उसका उपयोग हो या न हो तो भी परवाह नहीं। लिखने से रोज चिन्तन का मौका मिलेगा और विचार की सफाई होगी।

मैं एक कोने में घूमता रहता हूँ, फिर भी आपमें से हरएक के साथ ज्यादा-से-ज्यादा ताल्लुक रखना चाहता हूँ। इसके माने यह नहीं कि मैं ज्यादा पत्र-व्यवहार करूँ। क्योंकि मैं ज्यादा पढ़ नहीं सकता हूँ, खराब अक्षर तो कतई नहीं पढ़ सकता हूँ। कभी-कभी लंबे पत्र पढ़ना संभव नहीं होता है और छोटे पत्र में सार नहीं रहता है। फिर भी आप मुझे लिखा करें। कभी कोई मिलना चाहे, मेरे साथ रहना चाहे तो रह सकता है। मेरे वक्त पर पर आप हमला कर सकते हैं।

मौन का अभ्यास करें

हमने जो मौन प्रार्थना चलायी है, इसका कश्मीर में अद्भुत ही अनुभव आया। यह चीज सबके हृदय को किस तरह जोड़ सकती है, इसका वहाँ दर्शन हुआ। वहाँके मुसलमानों के सब तबकों में मेरा प्रवेश हुआ और सबने माना कि यह अपना ही मनुष्य है। लेकिन मौन का आम जनता पर जो असर हुआ, जिसमें कश्मीर में, कश्मीर-वैली में मुसलमान ज्यादा थे, उसमें मैं मानता हूँ कि यह चीज प्राणदायी है। उसका परिणाम हृदय पर बहुत गहरा होता है। खास कर विचारों में कभी क्षोभ आया, चर्चा करते हुए क्षोभ पैदा हुआ तो उस हालत में हम पाँच मिनट मौन रखें और शांत रहें तो आप देखेंगे कि उसका परिणाम लाठीचार्ज से भी ज्यादा होगा। मैंने लाठीचार्ज की मिसाल इसलिए दी कि कुछ लोग मानते हैं कि उसका असर होता है। खास कर जो लाठीचार्ज करनेवाले होते हैं, वे इस चीज को मानते हैं। इससे भी ज्यादा मौन का असर होता है। उससे चित्त एकदम अन्दर खींचा जाता है और शांत होता है। हम शांति-सेना की बात करते हैं। मानसिक शांति की बात करते हैं तो इसकी शक्ति को हमें समझना चाहिए, परखना चाहिए और अपने जीवन में इसको स्थान देना चाहिए। मुझे इसका व्यक्तिगत तौर पर अनुभव पुराना ही था और कुछ थोड़ा सामूहिक क्षेत्र में भी था, लेकिन वह आश्रम तक ही सीमित था। आम जनता के साथ जो इसका सम्बन्ध है, खास कर जिस सभा में औरतें और छोटे-छोटे बच्चे हैं, जो ज्यादा समझते नहीं हैं और सब धर्मों के लोग हैं, वहाँ मौन का विलक्षण असर होता है, यह मैंने अनुभव किया। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हम इसका व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर कुछ अभ्यास करें। ◆◆◆

[गतांक से समाप्त]

सर्व-सेवा-संघ की पुरानी प्रबन्ध-समिति के सदस्यों के बीच

पठानकोट (पंजाब) २२-९-'५९

सेवाग्राम की योजना समग्र दृष्टि सामने रखकर बनायी जाय

मैंने सेवाग्राम के बारे में जो पत्र लिखा था, उसमें आखिर में एक जुमला जोड़ दिया था कि हम उसकी तरफ ध्यान दे सकते हैं, उसका हमें कोई बोझ महसूस नहीं होगा। इसके पीछे एक इतिहास है। वैसे अब मेरी यह वृत्ति नहीं रह गयी है, धीरे-धीरे वृत्ति क्षीण हो चुकी है कि मैं कोई स्थूल कार्य का, व्यवस्था का भार उठाऊँ। जब मैं देखता हूँ तो पता चलता है कि पहले से ही मुझमें वह वृत्ति कम थी। वृत्ति के अलावा मेरा तत्त्वज्ञान भी व्यवस्था-कार्य के बहुत अनुकूल नहीं रहा है। इसके मानी यह नहीं कि मैं व्यवस्था को आरोग्य मानता हूँ या आध्यात्मिक क्षेत्र में व्यवस्था को कोई स्थान नहीं देता हूँ। मैं उसका स्थान बहुत गौण मानता हूँ। पहले से ही मेरा यह विचार है, लेकिन खास कर इन दिनों मैं कोई बात उठाऊँ, जिसमें कोई मेरा मार्गदर्शन माने, जिसमें मार्ग-दर्शन माँगना पड़े और मुझे देना पड़े, ऐसा मेरा विचार-प्रवाह नहीं है। तिसपर भी वह वाक्य लिखा गया। बात ऐसी है कि मनुष्य कुछ ऋण महसूस करता है, जो महसूस करना भी चाहिए, मगर मैं अपने लिए ऐसा नहीं मानता हूँ, फिर भी उसे ऋणशेष कह सकते हैं। बापू ने आश्रमवालों के साथ चर्चा की थी। उस समय मैं हाजिर नहीं था, लेकिन लोगों ने उसे लिख रखा है। उसमें बापू ने कहा था कि "मेरे जाने के बाद सेवाग्राम को किशोरलालभाई देखेंगे और

www.vinoba.in

शायद विनोबा भी देखेगा।" अब किशोरलालभाई तो नहीं रहे हैं। वे जब तक थे, तब तक हर बात में ध्यान देते थे, सलाह-मशविरा करते थे, उनकी राय किसीको जँचती नहीं थी तो बहुत आग्रह करने की उनकी वृत्ति नहीं थी, फिर भी काफी तफसील में जाकर मार्गदर्शन देते थे। अब वे गये। बापू ने मेरा नाम "शायद" में लिख रहा है और ठीक ही लिखा है। वह ऋणशेष मुझमें है।

रुचि धर्म नहीं, विधान धर्म

जिसकी जो रुचि होती है, वह उसके लिए धर्म नहीं होता है, बल्कि जो विधान है, वही धर्म होता है। वैसे रुचि की बात करो तो इस सारे भूदान में भी मेरी रुचि कहाँ तक थी, यह सवाल ही है। इस सारे लोक-संग्रह में मेरी रुचि कहाँ तक थी, यह सवाल ही है। लेकिन रुचि एक वृत्ति है। रुचि के अनुकूल ही बात होनी चाहिए, यह ठीक नहीं है। अनुकूल हो तो भी ठीक, न हो तो भी ठीक। प्रवाह के अनुसार क्या करना चाहिए, इसका पता चलता है। मैंने कहा था कि सेवाग्राम के काम का मुझे बोझ नहीं होगा। वह काम इतना छोटा नहीं है कि उसका बोझ न हो। लेकिन वह वाक्य कहने में मैं यही बताना चाहता हूँ कि मेरे लिए वह एक प्रवाहपतित वस्तु है।

मैंने उसमें और एक वाक्य जोड़ दिया था "बशर्ते कि वह द्वैत तंत्र न हो।" इसमें मैंने इतना ही सुझाया कि कोई तंत्र आयेगा और उसमें बहुत ज्यादा विचार-विमर्श करने की बात होगी तो मैं उसमें ज्यादा नहीं पड़ूँगा।

दो आधार

मेरे मन में एक बात बार-बार उठती है कि आपके कुल काम के आधार दो होने चाहिए। एक अन्तराधार और दूसरा बहिराधार। क्योंकि आपका काम ही दुहरा है। अन्तर, बाह्य दोनों से संबंध रखनेवाला है। अन्तर का आधार ब्रह्मविद्या के सिवाय दूसरा कुछ नहीं हो सकता है। चाहे वह शब्द कुछ बड़ा मालूम होता हो, फिर भी वह अपने देश का ही शब्द है, इसलिए मैं उसीका उच्चारण करूँगा और बहिराधार लोकसम्मति के सिवाय दूसरा नहीं हो सकता है। फिर लोकसम्मति का सबूत परिस्थिति के अनुसार बदल भी सकता है। उसका अनेकविध स्वरूप हो सकता है। याने एक ही निश्चित रूप हो, यह जरूरी नहीं है। हमने इसके कई रूप बताये हैं, जैसे सर्वोदय-पात्र, सूत्रांजलि आदि। इसमें और भी नाम जोड़े जा सकते हैं, जो सबको सूझें। लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिए कि लोकसम्मति के आधार के बिना हम कोई भी काम करेंगे तो समाज-रचना बदलने का दावा नहीं कर सकेंगे। वैसे सेवा करनेवालों का तो सेवा करने का हक है ही। जो उनकी सेवा लेना चाहेंगे, वे लेंगे, जो नहीं लेना चाहेंगे, वे नहीं लेंगे, लेकिन समाज-रचना बदलने का दावा करके जो सेवा की जायगी, वह हमेशा लोगों के चलते हुए प्रवाह के अनुकूल ही होगी, ऐसी बात नहीं है। उनके प्रवाह में वह काफी खलल भी पहुँचा सकती है। काफी उथल-पुथल कर सकती है। इसीलिए लोकसम्मति की जरूरत है।

मैंने यह भी कहा था कि किसी एक स्थान पर ज्यादा लोग इकट्ठा न हों और बहुत ज्यादा परिग्रह न हो। वैसे अगर परिग्रह को मान्यता ही देनी है तो संस्था के नाम से दे सकते हैं। दूसरे नाम से नहीं। परिग्रह का आधार समूह है, जो संस्था में इकट्ठा होता है। लेकिन संस्था के नाम पर भी ज्यादा परिग्रह न हो।

लोक-सम्मति का आधार जरूरी

मैंने यह भी कहा था कि आसपास के काम से अस्पृष्ट अखिल भारतीय या अखिल जागतिक काम न हो। वैसे सेवाग्राम गांधीजी का अन्तिम स्थान या मूल स्थान था, इसलिए वह अखिल जागतिक भी हो जाता है, लेकिन उस नाम से उस स्थान को आसपास के वातावरण का स्पर्श भी न हो और आसपास के लोगों की सम्मति के बगैर भी काम चले, यह मैं नहीं चाहता हूँ। हमारे कुल काम के लिए, खादी, ग्रामोद्योग, आश्रम, शान्तिसेना, शिक्षण वगैरह कुल काम के लिए मैंने यह बात कही है कि लोकसम्मति के आधार के बिना वे काम नहीं चलेंगे। बिना लोकसम्मति के हम काम करते चले जायँ तो मुझे अन्तःसमाधान नहीं होगा। हमारे कुल काम के सामने यह सवाल पहले पेश है।

सेवाग्राम मध्यबिन्दु हो

मेरी तरफ से एक बात अखिल भारत को मालूम हुई है कि अगर कोई जिला या क्षेत्र ऐसा निकले, जिसमें लोकसम्मति के आधार पर अधिक गहरा काम करने के लिए कार्यकर्ता जुट सकते हैं तो ऐसे क्षेत्र में मैं कुछ ज्यादा समय दे सकता हूँ। मैंने वर्धावालों से पूछा कि तुम मेरा यह चैलेन्ज क्यों नहीं स्वीकार करते हो? वर्धा छह लाख की आबादी का एक छोटा सा जिला है। उसमें सौ-सवा सौ कार्यकर्ता हों तो कुल जिले में पहुँच सकते हैं। इसके अलावा वहाँ जो अनेकविध संस्थाएँ हैं, उनके पीछे ट्रेडिशन है, वासना, संकल्प और संस्कार तीनों वहाँ पड़े हैं, जो बहुत अच्छे हैं। उन सबका लाभ लिया जा सकता है और अब आप सर्व-सेवा-संघ की नये सिरे से योजना कर रहे हैं, ऐसी हालत में हम दुनियाभर में घूमें और वर्धा जिले को ही क्यों टालें? वर्धा भारत के बीच में है। वहाँसे भारत में चारों ओर जाने की सहूलियत है तो उस जिले को सर्वोदय-जिला बनाने का आप क्यों नहीं सोचते हो? उसका मध्य-बिन्दु सेवाग्राम होगा और सेवाग्राम का मध्यबिन्दु आश्रम हो सकता है या और कोई दूसरा भी हो सकता है, जो आज बनाया जाय।

साबरमती में हमने वैसा ही किया था। जब वहाँ सारे आश्रम को समेट लिया गया और उसका उद्योग-मन्दिर बनाया गया तो कुल मकान, खेती, सामान आदि उद्योग-मंदिर को दे दिया। लेकिन एक जगह खाली छोड़ दी, जहाँ प्रार्थना होती थी। वहाँ लिख रखा कि यह आश्रम है, उद्योग-मन्दिर नहीं है। इस तरह एक प्रतीक के तौर पर आश्रम का वह हिस्सा रखा गया। मैं चाहता हूँ कि सेवाग्राम वर्धा जिले के कार्य का मध्यबिन्दु हो। फिर चाहे वह दुनिया का भी मध्यबिन्दु हो। उन दोनों में विरोध नहीं है। दुनियाभर के लोग वहाँ देखने आयें तो वे यह देखें कि वहाँके जीवित काम के साथ सेवाग्राम का सम्बन्ध है।

जब हमसे कहा जाता है कि वर्धा जिले में ग्रामदान नहीं हुआ तो हम कहते हैं कि ग्रामदान छोटी-सी चीज है। मुख्य बात है प्रेमदान। ग्रामदान तो अब टलेगा नहीं, जिस चीज पर हिंदुस्तान की जिंदगी निर्भर है, वह आपके हाथ से होनी हो तो होगी और आपके हाथ से न होनी हो तो दूसरों के हाथ से होगी। लेकिन वर्धा जिला सर्वोदय-जिला तब बनेगा, जब उस जिले में कोर्ट में एक भी केस नहीं जाय, ऐसी हालत पैदा हो जायगी।

www.vinoba.in

अखिल भारत का केन्द्र

मैं मानता हूँ कि अब नये सिरे से प्रान्त-रचना हो रही है तो उसमें से भी कुछ अच्छी चीज निकल सकती है। अब तालीमी संघ सर्व-सेवा-संघ में लीन हो गया है तो हम लोगों की सम्मति से उसे नयी तालीम या अच्छी तालीम भी कह सकते हैं, उस क्षेत्र में फैला सकते हैं। बाकी अम्बर-चरखा, गोसेवा वगैरह कई काम वहाँ चलते ही हैं। गोसेवा के बहुत अच्छे प्रयोग वहाँ हुए हैं। वहाँके काम में और थोड़ी शक्ति आप जोड़ना चाहते हैं तो मैं जोड़ सकता हूँ। सेवाग्राम के साथ यह चीज जुड़ जायगी तो वह एक प्राणवान वस्तु बनेगी। फिर मैं भी साल में महीना या पन्द्रह दिन उस जिले में दे सकता हूँ। वहाँसे छह सौ मील के अन्दर-अन्दर हिंदुस्तान के बहुत सारे प्रान्त आ जाते हैं। वर्धावाले यह जिम्मा क्यों नहीं उठाते हैं? ऐसा सवाल मैंने पूछा था। वहाँपर एक अस्पताल चलता है। हम ऐसे बुतशिकन्द नहीं हैं कि उसे तोड़ें। हम मूर्ति की स्थापना नहीं करते हैं, लेकिन मूर्ति-भंजक भी नहीं हैं। इसलिए उस अस्पताल में एकदम से प्राकृतिक उपचार चलाया जाय, यह तो हम नहीं कहेंगे, बल्कि चाहेंगे कि आज जो चल रहा है, वह चले और उसके साथ-साथ हम नयी चीजें भी दाखिल करते चले जायँ। वहाँपर एक वनस्पति का अच्छा बगीचा भी बनाया जाय तो फिर धीरे-धीरे लोग कहेंगे कि हमें वनस्पति का रस ही चाहिए, दूसरी दवाएँ नहीं।

मैं चाहता हूँ कि हमारा वर्धा अखिल भारत का केन्द्र भी हो। लेकिन उसमें मंडूकप्लुति न हो। याने आसपास के क्षेत्र का ताल्लुक छोड़कर दिल्लीवाले कूदें और सेवाग्राम आयें, यह न हो। सेवाग्राम में ट्रेनिंग की व्यवस्था भी हो सकती है। लेकिन वहाँका सारा काम आसपास के लोगों की सम्मति से, उनके आशीर्वाद से हो। वहाँपर ऐसा ऐश्वर्य खड़ा न हो कि जिसपर लोगों की नजर लगे।

वर्धा आध्यात्मिक स्थान हो

अभी नयी प्रान्त-रचना होगी तो मैं चाहता हूँ कि सेवाग्राम में जो बुनियादी स्कूल चलें, वे आदर्श मराठी स्कूल चलें। जो महाराष्ट्र के सन्तों के वचनों के आधार पर खड़े हों। आस-पास के लोगों पर प्रभाव न पड़े और उनके हृदय को खींच न सके, ऐसा न हो। अभी तक वहाँ जो प्रयोग चला, वह अच्छा ही था। लेकिन उसमें इस दृष्टि से काम न हो सका। इसका कोई इलाज नहीं था। जैसे एक जमाने में साबरमती की तरफ मेरी दृष्टि थी, वैसे अब वर्धा की तरफ यह दृष्टि रहेगी कि वह महाराष्ट्र के और भारत के भी मध्य में एक आध्यात्मिक स्थान हो। जैसे पंढरपुर है। अपने पूर्वजों ने कैसी यात्रा चलायी। उनकी शक्ति का अब खयाल आता है। मैंने बोधगयावालों से कहा कि वहाँपर तुम पूर्णिमा की यात्रा शुरू करो। इसमें इमेजिनेशन का सवाल है। युग कौन-सा आ रहा है, यह सोचना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि अब बुद्ध भगवान का जन्म हो रहा है।

सोशल रिफार्म

मुझे एक जापानी भिक्षु ने सुनाया कि जापान के साहित्य में लिखा है कि बुद्ध भगवान २५०० साल के बाद फिर से भारत में जन्म पायेंगे। इसका मतलब यह है कि उनके तालीम की जरूरत महसूस होगी। भारत उस तालीम का उद्गम-स्थान है। इसलिए हमें समझना चाहिए कि बोधगया एक स्वाभाविक केन्द्र हो सकता है और उसे उस दृष्टि से डेवलप किया जाय और लोगों को प्रेरित किया जाय। वहाँपर यात्राएँ चलें। जिसमें हिन्दू, बौद्ध, जैन सब आयें। इस दृष्टि से जब मैं सेवाग्राम की तरफ देखता हूँ तो ध्यान में आता है कि वहाँपर बहुत सारे हरिजन बौद्ध बन चुके हैं। इस घटना की तरफ हमें ध्यान देना चाहिए। जमनालालजी ने लक्ष्मीनारायण का मन्दिर हरिजनों के लिए खोला, जो हिन्दुस्तान में हरिजनों के लिए खुलनेवाले मंदिरों में पहला, दूसरा ही होगा। उस वक्त हरिजन बड़े उत्साह से उसमें आये। दूसरे लोगों में से कुछ आये तो कुछ नहीं आये। लेकिन आज हालत यह है कि उस मन्दिर पर अगर किसीका बहिष्कार है तो हरिजनों का है। क्योंकि जबसे उन्होंने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया है, तबसे उनके लिए वह मन्दिर नापाक स्थान बन गया है। याने जिनके लिए वह मन्दिर खुला, उन्हींका उनपर बहिष्कार है। हमें सोचना चाहिए कि हमने धम्मपद पर लिखा है। हमारे भाई ने और कुन्दर ने भी लिखा है। इसका लाभ लेकर वहाँपर हरिजनों में हम जा सकते हैं। उनमें बौद्धधर्म के लिए जो प्रीति पैदा हुई है, वह हमारे खिलाफ नहीं है, बल्कि उसे हम एक सोशल रिफार्म की दृष्टि से मान सकते हैं। हिन्दू धर्म में ऐसे कई रिफार्म हुए हैं और उन सबका उसने लाभ उठाया है। यद्यपि वहाँके हरिजन बौद्ध बनते हों तो उनकी स्थूल दृष्टि है और कुछ नफरत भी है। लेकिन फिर भी उससे उनमें चैतन्य-संचार हुआ है, उनमें से कुछ लोगों ने शराब छोड़ी है तो रिफार्म के तौर पर भगवान बुद्ध के नाम से उनमें कई अच्छी चीजें दाखिल की जा सकती हैं। यह भी कार्य-क्षेत्र हमारे लिए खुला है, ऐसे सब विचार लेकर हम वहाँ काम करें तो हो सकता है। ◆◆◆

आज शहरवाले देहातवालों से कहते हैं कि भगवान ने आपको अच्छा जिस्म दिया है तो आप दस घंटा मेहनत कीजिये, अपना पसीना बहाइये और भगवान ने हमें दिमाग दिया है, इसलिए हम दिमाग का ही काम करेंगे। इसपर कोई भी बच्चा पूछेगा कि अगर ऐसा ही होता तो भगवान कुछ राहू और कुछ केतु पैदा करता, कुछ सिर और कुछ धड़। लेकिन भगवान को यह मंजूर नहीं है, इसलिए उसने शहरवालों को भी सिर के साथ हाथ, पाँव और पेट दिये हैं। उन्हें भी भूख लगती है और देहातवालों को भी हाथ-पाँव के साथ सिर दिया है, उन्हें भी बुद्धि की भूख लगती है। इसलिए दो टुकड़े जोड़कर रफू करके जोड़ा हुआ वस्त्र बनाने के बजाय एक बुना हुआ अखंड वस्त्र बनाया जाय। शहरवालों की जिंदगी भी पूर्ण हो और देहातियों की भी। इस तरह हम विकेन्द्रित ग्राम-योजना चाहते हैं। ◆◆◆

अनुक्रम

१. शांति-सेना-मंडल और हमारा कर्तव्य
पठानकोट २४ सितम्बर '५९ पृष्ठ ७२७
२. सेवाग्राम की योजना समग्र दृष्टि सामने रखकर की जाय
पठानकोट २२ सितम्बर '५९ „ ७२८

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१
तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी
www.vinoba.in